|| श्री गणेशाय नमः ||

हरिः ॐ

Astro • Puja • Vastu

हरी ॐ धार्मिक पूजा विधी केंद्र

ज्योतिष आणि वास्तु सल्लागार

योगेशशास्त्री ढवळे (गुरुजी)
Mob. 95944 28749

निलेशशास्त्री ढवळे (गुरुजी)
Mob. 86524 02078

श्री शनि-माहात्म्य

श्री गणेशाय नमः। ॐ नमो श्री गणनायक । एक दंता वरदायक ।
स्वरूप-सुंदरा विनायक । करिए कृपा मुझ पर ॥१॥
अभी नमन करूँ ब्रह्मकुमारी । हंसारूढ वागीश्वरी ।
वीणा शोभा दक्षिण में है देती । विजयमूर्ति सर्वदा ॥२॥
नमन मेरा गुरूवर्य को । सुखमूर्ति करुणालया ।
नमन करुं संत-श्रोताओं के चरणों में । अभेद भेद करके ॥३॥
अभी नमन करुं श्री पांडुरंग । आये तुम्हारी कथा का प्रसंग ।
ज्ञात हुआ मेरे भाव साथ । करिए कृपा मुझ पर ॥४॥
गुजरात भाषा की कथा । नवग्रहों की सिद्धांत से ।
वह सुनिए एकचित्त से । संकट, व्यथा न बढ़ते हैं ॥५॥
वहाँ नगरी उज्जयिनी नामक । राज्य करते थे राजा विक्रम ।

परन्तु हुआ वहाँ चरित्र । सुनिए चित दे कर ।।६।।
किसी एक दिन प्रातःकाल । बैठा हुआ था सभामंडल ।
वहाँ महापंडित उस वक्त । छोटे-बड़े बैठे थे श्रोता जन ।।७।।
ऐसी सभा बैठी थी भरचक । वहाँ चर्चा निकली सुभट ।
बोले नवग्रहों में कौन श्रेष्ठ ? कहिए स्पष्ट पसंद करके ।।८।।
कौन-से ग्रह की कैसी स्थिति ? कैसी पूजा, कैसी मति ?
कौन-सा रूप ? कैसी गति ? ऐसा यथार्थ कहिए ।।९।।
ऐसा सुनते ही दिया उत्तर । आगे आये सामने पंडित ।
पुस्तकों का निकाला भंडार । बोले वे यथामति से ।।१०।।
प्रथम एक पंडित बोला । रवि ग्रह तो होता है भला ।
जो करने लगा उनकी उपासना । उसे ग्रहपीडा न देती बाधा ।।११।।
रवि तो सूर्य नारायण । जो नर हुए उनमें परायण ।
उनके विघ्न होते हैं दूर । महा सामर्थ्य रवि का ।।१२।।

आधि, व्याधि, दारिद्र । स्मरण मात्र से होते हैं दूर ।
सो उपासना की जिस नर । जो सोचा अर्थ पूरा करें सर्व ॥१३॥
रवि तो प्रभुख देव । उसके बिना सर्व ही जानना व्यर्थ ।
आज्ञा पालन करते नवग्रह । ऐसा श्रेष्ठ ग्रह है यह ॥१४॥
सुनकर रवि की वार्ता । और दूसरे ग्रहों की कथा ।
वे निवारे सर्व व्यथा । ऐसे नवग्रह ही समर्थ ॥१५॥
परन्तु रवि ऐसे है महाबली । सर्व मेरे अंतर बली ।
प्रत्यक्ष दिखते है नेत्र कमलों में । वही है सूर्य नारायण ॥१६॥
तभी दूसरा पंडित बोला । सोम का बल अद्भुत है होता ।
वह माली है बोलते है ऐसा । वनस्पति का पोषण करते हैं ॥१७॥
जय के आराध्य देव । शिव सांब कैलासनाथ ।
उसके है विलसता भाल पर । सो उसे श्रेष्ठ जानिए ॥१८॥
चन्द्र अमृत की वर्षा करता है । तृप्त सर्व देवों को करते हैं ।

निशिराज महा रूप मय है । षोडश कला जिसकी हैं ॥१९॥
वह किसी से डरता नहीं है । सौख्यदाता सर्व पर अति ।
सदा सर्वदा निर्मल मानस वाले । धन्य है पूजनको जिसके ॥२०॥
तीसरा पंडित फिर बोले । सुनिश्चित राजा सुनिए ।
मंगल तो महा समर्थ । कथा सुनिए उसकी ॥२१॥
मंगल ग्रह है महाक्रूर । जैसा वह खड्ग की धार ।
उसका न जान सकते पार । सर्व ग्रहों में यह है वरिष्ठ ॥२२॥
मंगल ग्रह तो सुनार । क्रूरता जिसकी अति अधिकतर ।
किन्तु उसने कृपा की पूजकों पर । किया सर्वदा मंगल ॥२३॥
पूजा न करिए धरके गर्व । उबलता है उग्रमूर्ति सो वह ।
संतति संपत्ति करे विलोप । अंत में जीव का नाश कर ॥२४॥
अपने पूजकों पर सदा प्रसन्न । सर्व अर्थ किये पावन ।
सर्व दुःख दूर कर । अंतर-बाह्य संरक्षण करे ॥२५॥

तभी बोले चौथा पंडित । बुध होता है महा बलवंत ।
बुध का प्रताप अद्भुत । सर्व ग्रहों में ।।२६।।
बुध जाति का है वणिक । नव ग्रहों में शिरोमणी ।
विघ्न उसकी पूजा से होता नहीं । सर्वानंद प्राप्त करें ।।२७।।
बुध जिस पर कृपा करें । उसको लक्ष्मीवंत करें ।
ऐसा वह परोपकारी है । बुध ग्रह जानिए ।।२८।।
बुध ग्रह अधिक स्वच्छ । उसके सर्व मार्ग सुचेत सुभट ।
कौन-से कार्य में तूट । तभी न करे कल्पांत ।।२९।।
बुध की बुद्धि भारे । किसी से वह निष्ठुरता न करें ।
संसार की चिंता हरे । प्राणिमात्र की सर्वथा ।।३०।।
फिर बोले पांचवा पंडित । गुरु का सामर्थ्य होता है अद्भुत ।
गुरु वह श्रेष्ठ सर्वांत । इंद्रादि देव समस्त ।।३१।।
गुरु ज्ञान का न जान सके पार । भाविकों पर यह करुणाकर ।

कर्म-अकर्म का करे चूर्ण । भवभय व्यथा का ॥३२॥
दुःख और दारिद्रय, रोग । स्मरण मात्र से होता भंग ।
नव ग्रहों में महा योग्य । ऐसा गुरु जानिए ॥३३॥
गुरु जाति का होता है ब्राह्मण । सर्व में श्रेष्ठ होता वर्ण ।
सर्व देव करे मान्य । गुरु वचन का ॥३४॥
गुरु होता है ज्ञान का संपूर्ण । उसके होता नहीं दूसरा समान ।
उसके आगे नुर की धारा । कल्पना की कदापि ॥३५॥
सो करिए गुरु की सेवा । इसलिए ग्रहों में कौन कैसा ?
गुरु सर्व भाव से भजना । उससे संतोष सर्व ग्रहों का ॥३६॥
शिवने गुरु पूजन किया । वहाँ पाड क्यों दूसरों का ?
ऐसा श्रेष्ठ जो सर्व का । आगम में आगम ॥३७॥
तभी छट्ठा पंडित बोला । शुक्रग्रह होता है बहुत भला ।
जिसने राक्षसों पर उपकार किया । संजीवनी मंत्र करिए ॥३८॥

शुक्र गुरु तो दैत्यों का । त्रिभुवन में धाक रहता जिसका ।
पार न जान सके सामर्थ्य का । इसलिए श्रेष्ठ वह ॥३९॥
शुक्र की शक्ति हो बहुत । वह करे कर्माकर्मा का चूर्ण ।
विघ्न दूर के दूर होत । शुक्र का लेने से नाम ॥४०॥
शुक्र पूजन जो करे तत्पर । उसके शौर्य नहीं पारावार ।
जो दिव्यदेही निरंतर । एकाक्ष है वह ॥४१॥
आधि, व्यधि, दुःख-दारिद्रय । स्मरण मात्र करने से होते दूर ।
सर्वाभीष्ट होते हैं प्राप्त । प्राप्त किया पूजकों ने ॥४२॥
नवग्रहों में शिरोमणी । जिसकी महिमा पुराणों वर्णित में की ।
मान्यता श्रेष्ठ सर्व ने दी । शुक्र की होती है यह ॥४३॥
ऐसे हैं छः ग्रह सुने राजा ने । तर्जनी से मस्तक हिलाए भारी वजन ।
याने उत्तम कार्य कहें । अखंडित करिए उनके स्मरण ॥४४॥
बाकी रहे ग्रह कौन ? चुनकर बोला पंडित ।

कैसे उनके नाम निशानी ? । वे मूर्तियों-सी बोलिए ॥४५॥
सो संकेत से बोले पंडित । राहु और दूसरा केतु ।
ये दोनों अति अद्भुत । दैत्य कुल के होते हैं ॥४६॥
मातंग जाति के दोनों । दुष्ट क्रिया बोलिए ।
उसके दर्शन के लिए चंद्र आकाश में । अति कांपते हैं ॥४७॥
राहू पीडा देता है चंद्र को । केतु सूर्य को ।
उसको बोलते हैं ग्रहण । दिखाता है प्रत्यक्ष दृष्टि से ॥४८॥
प्राणि मात्र सर्व जन । उनको छोडता नहीं पीडा दिये बिना ।
परन्तु किया पूजा-स्मरण । किंचित् करते हैं ॥४९॥
राहू महापीडक अनिवार माया । तद्रुप और केतु भी जान राजा ।
दोनों की एक-सी चर्चा । पूजा-स्मरण से संतोष पाते ॥५०॥
किन्तु सर्व ग्रहों में अति क्रूर। जनों को पीड़ा करते हैं अधिक ।
सो पूजन-स्मरण निरंतर । राहु केतु का करिए ॥५१॥

तभी नववाँ पंडित बोला । शनि ग्रह श्रेष्ठ सब में ।
बलवान होता है अति अद्‌भुत । न जान सकते कला उनकी ॥५२॥
वे जिनके पर करे कृपा । उनके सर्व मार्ग होते हैं सरल ।
ग्रह दिकयाल पर करे छाया । तभी शनि ग्रह का ॥५३॥
जिन के पर चढता है कोप । उन के पर विविध विघ्न आते तुरंत ।
उनका संसार बिगडे । न रहे वह जातक ॥५४॥
शनिदेव महा क्रोधी । जिसका पराजय न होता है युद्ध में ।
देव दानवों त्रिशुद्धि । दुःख दाता शनिदेव ॥५५॥
जो कुछ भाविक सज्ञान नर । जो इस पुस्तक का करे आदर ।
पूजन स्मरण निरंतर । उन पर कृपा करे शनिदेव ॥५६॥
शनैश्चर की मूर्ति काली । वह जाति का है तेली ।
चरण दृष्टि पड़े सुरत सलोनी । पूजा की कालभैरव की ॥५७॥
उसकी जिन पर । करे उनको चनकाचूर ।

अथवा कृपा की जिन पर । उनको सर्व आनंद होता है प्राप्त ॥५८॥
दृष्टि का सुनिए चमत्कार । जन्म से जब-जहाँ शनैश्चर ।
तब दृष्टि पडी पिता पर । उसे कुष्ठ भरा सर्व अंग पर ॥५९॥
पिता का रथ का था जो सारथी । वह पांगुल हुआ निश्चिती ।
अश्वों के नेत्रों प्रति । अंधत्व आया तत्क्षणी ॥६०॥
तभी उसने उपाय किये बहुत । तो गुण न उसके अणुमात्र ।
जब दृष्टि फिरी शनैश्चर । तब तिनों ही स्वस्थ हुए ॥६१॥
ऐसा सुनकर राजा विक्रम । हँसकर बोले सप्रेम ।
बोले पुत्र जन्म का क्या काम ? ऐसा अपवित्र जो ॥६२॥
वह पुत्र नहीं केवल वैरी । जो जन्म होते ही ऐसा किया ।
आगे चलकर क्या न करें ? कहिए पंडित हो ॥६३॥
ऐसा बोला हंस कर । कि तालियाँ बजायीं जोर से ।
सभा में विनोद वचन । बोले कैसा है यह पुत्र ? ॥६४॥

ऐसा बोलने के समय । किन्तु कैसा नया आया परिवर्तन ।
वह सुनिए अभी चतुर । चित्त देकर ॥६५॥
उस समय विमान में शनिदेव । जाते थे बैठ कर ।
राजा का वाक्य सुनकर तत्क्षण । विमान नीचे आया उतर ॥६६॥
अकस्मात् सभा में आए । तभी विमान सहित बैठे ।
तभी देखकर सभा पंडित । बोले शनिदेव आये ॥६७॥
सो राव झट्ट करके ऊठे । जानकर चरणों में नमन किए ।
उसे तभी फेंका झटककर शनिदेव ने ॥६८॥
बोले तुम राजा ऐसा मस्त । मजाक करके अद्भुत ।
उनका चमत्कार क्षणांत । मैं अभी बताऊँगा वह देखिए ॥६९॥
तुम बहुत करता है मजाक । न थी खिली हुई कली ।
तभी कन्या राशि में भूल । तेरा ग्रह मैं आया ॥७०॥
अभी देखो मेरा चमत्कार । तुम मत करो गर्व अधिक ।

ऐसा बोले अति सत्वर । विमानरुढ क्षणमें हुए ॥७१॥
तभी उनके राव लगे चरणों में । कृपा करे दीन पर बोले ।
अन्याय क्षमा किया । कृपालु शनिदेव ॥७२॥
तभी वे न माने शनिदेव । बोले मैं तुम्हें बताऊँगा अनुभव ।
तभी मन में खिन्न हुआ राव । चिंता मन में बहुत की ॥७३॥
फिर पंडित को बोले । हम महाग्रह ऊगते ही छल गए ।
वह हमें अभी कष्ट कैसे देंगे ? सो कैसे अभी करेंगे ? ॥७४॥
जो जो आगे होगा । बोले बुद्धि से विकसित होकर तदनुसार ।
सो जो होगा लिखिताक्षर । वैसे अभी होगा ॥७५॥
राव दिलगीर मन से हुआ । सभा को विसर्जन किया ।
महल में जाता हुआ । कुछ आंतरिक सूचना दिया ॥७६॥
किया संध्या-स्नान । फिर किया भोजन ।
बाद में किया गया शयन । अकेला पलंग पर ॥७७॥

ऐसा किया एक मास । हुआ राजा विक्रम को ।
फिर क्या हुआ उस कक्ष में ? उसे अभी सुनिए ॥७८॥
राजा विक्रम को आया शनि । बारहवें अति क्रूर स्थान पर ।
जिस से त्रासित हुए बहुत प्राणी । अभाविकों को पीडित किया ॥७९॥
तभी पंडित बोला वाचा से । राजा ने पूजन किया शनि ग्रह का ।
साड़े सात वर्ष नियमित रूप से । सामर्थ्य है ऐसा जानिए ॥८०॥
तुम विनोद से हंसे शनि पर । सो वह आपत्ति दे तुम्हारे पर ।
जो कुछ गर्जन करके त्रैलोक्य पर । सो उसे महाग्रह जानिए ॥८१॥
चित्त करिए एकाग्र । सुनिए पूजा का प्रकार ।
जिसका कारण शनैश्चर । कृपा करेंगे तुम्हारे पर ॥८२॥
प्रथम करिए औषाधि-स्नान । फिर करिए प्रतिमा का पूजन ।
अश्व की नाल लेकर । उसकी प्रतिमा करिए ॥८३॥
शास्त्रविधि पूजा निर्धार । फिर तैल-अभिषेक कर ।

मृत्तिका के कुंभ पर । उसकी स्थापना करिए ॥८४॥
स्थापना होने के बाद । पूगी फल ब्राह्मण को देकर ।
तेईस सहस्त्र जप संपूर्ण । यथा प्रार्थना करिए ॥८५॥
जपसंख्य होने के बाद । चतुर्थांश हवन करिए ।
हवन होने पर । दान शनि का करिए ॥८६॥
सो जपकर्ता ब्राह्मण से । शनैश्चर रुप मानकर उसे ।
दक्षिणा देकर पूजा के लिए । प्रसन्नचित्त करिए ॥८७॥
फिर ब्राह्मण-भोजन करावें । यथा शक्ति दान दीजिए ।
ब्राह्मण होते हैं पूर्ण तृप्त । संतोष प्राप्त करे शनिदेव ॥८८॥
जैसे रक्षा करती बालक की माता । वैसे रक्षा करता निज भक्तका ।
पंडित बोला समर्थ राजा । कथा ऐसी सुनिए ॥८९॥
राजा पंडित को बोला । शनि न मानिए हमें ।
उसके माता-पिता के स्थान पर पूजा । क्योंकि रक्षा की उसकी ॥९०॥

फिर बोले विक्रम पंडित से । तुम जाए अपने घर में ।
जो होने वाला है वह निश्चित है । जो घड़ा हुआ है उसे न टालिए ॥९१॥
ऐसा बोले उत्तर । क्या हुआ चमत्कार ? ।
चित्त करिए स्थिर । श्रवण करिए सर्व ॥९२॥
ऐसे फिर किसी एक दिन । दो प्रहर के समय ।
कारवानके लिबासमें उज्जयिनी में । घोड़े बैचने आए शनिदेव ॥९३॥
रूप अपना बदल कर । अश्व बैचने के लिए लाए ।
तभी वहाँ ग्राहक आये । राजा ही आया उस स्थान पर ॥९४॥
तभी किंमत पूछी राजा ने । तब बोले शनिदेव ।
अश्व फिराकर देखिए । फिर मूल्य उसका मालूम पडे ॥९५॥
तभी सारंगा अश्व राजा लाया । चाबुक के स्वर से उपर बैठा ।
उसने फिराया चौगान में घोड़ा । अति उत्तम फिरा ॥९६॥
तभी दूसरा घोड़ा अति उत्साही । उसका मूल्य रूपये लक्ष एक ।

वह छोड़कर तात्कालिक । लाया विक्रम के पास ॥९७॥
तभी उस सौदागर ने क्या किया ? राजा विक्रम को बिठाया ।
घोड़ा फिराते हुए राजा बोला । अति उत्तम फिरता है ॥९८॥
तभी उस घोड़े को कोरड़ा मारा । उड़ा गगनपंथ में घोड़ा ।
पवन वेग से जाता था घोड़ा । महावन में उस समय ॥९९॥
अधिक मारने से कोरड़ा । वैसे वैसे अधिक जाय पंथ में ।
महान अवस्था चित्त की होगी । कैसे वह बना ? बोलो ॥१००॥
दूरदेशी अति उज्जड । जहाँ घोर वन महा झाड़ी ।
वहाँ नदी का दूसरे किनारे । घोड़ा जाकर उतरा ॥१॥
वहाँ उतरा नीचे राजा । वहाँ किन्तु नया हुआ ।
घोड़ा नहीं, नदी गुप्त हुई । झाड-झुंड के साथ ॥२॥
तभी आश्चर्य विक्रम को हुआ । बोले ईश्वर की गति न जान सके कोई ।
घोड़ा और वन का । क्या विचार परिस्थिति हुई ॥३॥

तभी अस्त हुआ सूर्यदेव । अंधकार प्रवर्तने लगा रजनी ।
आगे मार्ग न दिखे नयन को । फिर वहाँ सो गए ॥४॥
चार प्रहर बीत गये । कल का आया सूर्य ।
फिर तो वह एक नगर का मार्ग धर कर । राजा विक्रम हम ॥५॥
तभी वहाँ चार योजन दूरी पर । नगरी तामलिंदा नामक ।
वहाँ जाने पर हुआ उस अवसर पर । धीरे-धीरे पहुँचा ॥६॥
यहाँ उज्जयिनी की कथा रही । वह अब चाहिए श्रवण करिए ।
नगरजनों ने राह देखी । चार प्रहर राजा की ॥७॥
तभी सौदागर बोले प्रधान से । घोड़ा दो वापस करो हमारी ओर ।
किस की ओर ले गए घोड़े को ? । राजा विक्रम ॥८॥
तभी जाते हुए देखा बाहर नगर । कोस, दो कोस, कोस चार ।
किन्तु कहीं भी न दिखे राजेश्वर । फिर चिंता फैली ॥९॥
तभी सौदागर बोले प्रधान से । सत्त्वर शोध लाइए राजा को ।

नहीं तो हमें । घोड़े का पैसा दो ।।११०।।
तभी प्रधाने को पड़ी चिंता । मन में बोले कैसे करे अभी ? ।
राजा की शोध न लगी सिद्धांत से । सौदागर ने अटकाया ।।११।।
फिर प्रधान ने क्या किया ? सौदागर को बुलाया ।
बोले घोड़ा का मूल्य क्या है निश्चित किया ? । वह बोलो हमें ।।१२।।
उसने मूल्य कहा झट्कर । फिर पैसा उसको दिया ।
तभी प्रधान से पूछा तुरन्त । जाते हुए शनिदेव ।।१३।।
सौदागर वापस गया । बाद में आगे क्या हुआ ? ।
नगरजन सर्व हुए दुःखी । देश के नगरोंमें ढूंढे ।।१४।।
किन्तु नगरी हुई ऐसी । यहाँ राजा विक्रम ने क्या किया ? ।
तभी तामलिंदापुर नगरी । ग्राम में दाखिल हुआ ।।१५।।
तभी वहाँ व्यवहारी साहूकार । जाति का वैश्य, बहुत धनाढ्य ।
उसी वक्त उसके दुकान पर । राजा ने आराम लिया ।।१६।।

साहूकार की दुकान पर । विक्री होने लगी द्विगुनी ।
उसने भला मनुष्य जाना । उसका आदर किया ॥१७॥
फिर व्यवहारी भावपूर्वक बोला । तुम अभी मुख घुलिए ।
ज्ञाति से कौन हो ? हमे कहिए । तुम्हारा नाम, ग्राम आदि ॥१८॥
राजा तभी बोले वैश्य को । हम क्षत्रिय है ज्ञाति के ।
हमारा मुल्क दूर देशमें । क्षण एक वहाँ उतरा ॥१९॥
फिर शाहूकार ने पाक करवाया । अति उत्तम छः रसयुक्त ।
भात, तली हुई भाजी, पापड देखकर । के राया बहुत प्रकार ॥१२०॥
फिर वह वैश्य बोला क्षत्रिय से । उठो जल्दी भोजन करने के लिए ।
भोजन करिए शीघ्र । फिर जाईए सुखरुप ॥२१॥
फिर राजाने किया संध्यास्नान । सत्त्वर पूर्ण हुआ भोजन ।
उत्तम प्रकार के पकवान्न । सेवन करने से तृप्ति हुई ॥२२॥
तभी वैश्य बोला क्षत्रिय से । सत्य बोलिए हमें ।

फिर विक्रम ने उस से कहा । तभी वह निज अंतर की बात समझा ।।२३।।
अभी वह साहूकार की कन्या । नाम उसका अलौलिका ।
उसका यह प्रतिज्ञा देखी । इच्छित वर से शादी करना ।।२४।।
किन्तु उसे इच्छावर न मिला । वैश्य ने निरंतर शोध किया ।
तभी यह विक्रम राजा होगा । सो उसे अपनी कन्या देना ।।२५।।
तभी वह बोला कुमारिका से । बेटी, उत्तम वर लाये तुम्हारे लिए ।
अभी तू वरमाला उसको पहना लें । शंका न करे ।।२६।।
यह स्वरूप में सुंदर है । बत्तीस लक्षण के साथ है ।
यह भाग्यवान वर है ऐसा जानिए । उस से कुमारिका ने शादी की ।।२७।।
तभी कुमारी पिता से बोली । तुम्ही बहुत वर्णन जिसका करते हैं ।
किन्तु मेरे मन में जचता नहीं । तभी न वरी उससे निर्धार करके ।।२८।।
आज देखकर उसके लक्षण । कैसा चातुर्य क्या ज्ञान ।
भाषण में प्रविण । सर्व आती है कला ।।२९।।

ऐसे बोलते हुई सांज । तभी अस्त हुआ भानुराज ।
पिता बोले महाराज । पथिक को भेजिए ॥१३०॥
फिर वैश्य बोला क्षत्रिय से । जाकर निद्रा करिए ।
अति रम्य चित्रशाला । वहाँ सर्व विदित होगा ॥३१॥
फिर विक्रम उठकर चलने लगा । जहाँ थी चित्रशाला ।
वहाँ हँस मयूर कोकिला । विविध प्रकार के चित्रोंसे भरी हुई ॥३२॥
चित्र रेखांकित किया बहुत कुशलता से । घोड़ा और गजरथ ।
चित्रकार ने चित्र रेखांकित किया । आलस बिलकुल न किया ॥३३॥
आगे राजा नयन से देखने लगा । तभी अपूर्व पलंग तत्क्षण देखा ।
उस पर दो कंबल ओढाया । शैया बिछाकर ॥३४॥
रत्नखचित सुरंग पलंग । उस पर विविध प्रकार के रंग ।
जाई, जुई पुष्प सुरंग । सेज किया अति सौम्य ॥३५॥
उपर लटकती हुई मोतियों के पड । चंद्रमा फड़फड़ करने लगा ।

समय धड धड चलने लगे । चतुष्कोण चार पर ॥३६॥
ऐसा देखकर राजा हुआ चकित । याने समज में न आवे क्या है वृत्तान्त ? ।
यह कौन-सा देश ? कौन-से हाल ? होता है वह समज में न आता ॥३७॥
कर्म की गति है गहन । जो-जो होने वाला है, कभी चूके न वह ।
वह-वह भुगतने पर ही छूटे । देवादि को सर्व ॥३८॥
सो यह शनिदेव का षड्यंत्र । उसने ही माया रची है जान ।
हमें अभी होनेवाला है वह होत । जो सर्व को करते हैं पीडित ॥३९॥
ऐसा मन मे करिए विचार । फिर निद्रा की राजेश्वर ।
उसके पलंग पर तभी सचमुच । अपने अंतर में हुए सावधान ॥१४०॥
विविध प्रकार के किए विचार । बुद्धि के तरंग अपार ।
सो निद्रा न आवे शांत । किन्तु मुख आच्छादन करने-से ॥४१॥
किन्तु राजा ने ऐसा किया । फिर वैश्यकन्या क्या करे ? ।
पंचारती हाथ में लिए । आये रंग महल में ॥४२॥

उसने किया सर्व श्रृंगार । गले में शोभते हैं मोतियों के हार ।
केशर, कस्तुरी, कर्पूर । सुगंधी द्रव्य लाए वहाँ ।।४३।।
पैर में पैंजण, नुपूरें । वे झंकार करते हैं और गजरें ।
पदकों में जड़े दिव्य हीरे । उनका तेज़ फैलता है ।।४४।।
वह जैसी मानों पुतली केवल । बत्तीस लक्षणी आकर्षक ।
मृगनयनी विशाल भाल । उभी आकर ठकी हुई ।।४५।।
निद्रा का क्षमा मांगकर । पलंग पर सो गया जान ।
वह न उठे ऐसा जान । फिर कुमारी क्या करे ? ।।४६।।
लेकर हाथ में चंदन पात्र । अलौलिका हो पानी सिंच ।
परन्तु जागा नहीं हुआ राज । कैसे भी प्रकार कर ।।४७।।
ऐसा एक प्रहर हुआ कष्ट । न जागने पर सहन किया अपमान ।
मुक्ताहार खुंटी पर रख । निद्रा की सचिंत ।।४८।।
तभी आयी कामिनीको । राजाने मुख को उघाड़ा ।

अपने मन में विचार किया । मैं सत्त्वधीर को बुलाता हूँ ॥४९॥
परोपकारी मेरा मन । रातदिन पाप से डरता ।
तभी वह है कन्या ऐसा जान । कैसे भाषण करें ? ॥१५०॥
ऐसे अपने मन से किया विचार । तभी वह कामिनी के निद्राभर ।
फिर देखते हुए चित्र । वहाँ हुआ अपूर्व ! ॥५१॥
चित्र का हंस निर्जीव । किन्तु उसे क्या हुआ लाघव ? ।
नीचे उतरा सावयव । खाने लगा मोती हार को ॥५२॥
राजा देखकर हुआ चकित । मन में आश्चर्य चकित होकर बोला ।
किन्तु यह बात अनुचित । हमें दुःखदायक ॥५३॥
जब निकाल लिया हार । किन्तु आदर्श प्रकार से गिर पडे ।
मने में न देना चाहिए दूसरों के दुःख । सो ऐसा मेरा है आदर्श ॥५४॥
परन्तु वह गोष्टि है अघटित । हमें दुःख होता है प्राप्त ।
ग्रहदशा का मानिए सच । किन्तु न निकाल लिया हार ॥५५॥

ऐसा निश्चय राजा ने किया । यह सर्व हार हंस ने निगला ।
वह देखकर राजा सो गया । कुमार के बाजुमें ॥५६॥
तभी उगा ऐसा दिन । कुमारी हो कर उठी विवश ।
बोले यह पिता से वर लाया जान । अतिमूर्ख नपुंसक ॥५७॥
मन में आया भारी क्रोध । उठकर चली झटपट ।
तभी वह न खुंटी पर देखा हार । वहाँ कुछ दिखे नहीं ॥५८॥
कुमारिका ने न देखा हार । वह बोली मुसाफिर है अविवेक ।
महाठग ने लिया हार । निद्रा की सुखरूप ॥५९॥
किन्तु मेरा हार दे झटकर । तुझे पचने वाली नहीं चोरी ।
ऐसी बात ने तुझे महानता दी । रहनेवाली नहीं सिद्धांत से ॥१६०॥
किन्तु मेरा हार मुझे दे वापस । फिर तुम जा अपने पंथ पर ।
इसकी चर्चा हुई निश्चित । शरीर का होगा नाश ॥६१॥
तभी पथिक कुमारिका से बोला । हमने हार नहीं लिया, मैं जानता नही ।

यहाँ निद्रा की इसलिए बोला । आरोप हमारे पर डाला ।।६२।।
तभी वह कुमारी संतप्त मन से । तत्क्षण बोली पिता से ।
बोला मेरे लिए इच्छा-वर लाये । लक्षण अति उत्तम उसके ।।६३।।
तुम ठग चोर घर लाये । वह निपुण तस्कर विद्या में ।
मेरा हार चोर लिया उसने । सो वह माँगकर लेना चाहिए ।।६४।।
तभी पथिक से बोला वैश्य । तुझे क्यों दिया विश्राम?
सो तुम क्यों बैठ गया हार लेकर ? अच्छा हुआ उपकार किया ।।६५।।
उत्तम भोजन देकर देखा । और निजकन्या अर्पण किया ।
ऐसा होता है महामूर्ख । यह क्या आचरण किया ? ।।६६।।
अच्छी तरह वापस किया उपकार । दे दो मेरी कन्या का हार ।
फिरे तुम जाओ जिस रास्तेसे आये सत्वर । आये हुए पंथ से ।।६७।।
तभी राजा बोले शाहूकार से । तुम्हारा हार नहीं मेरे पास में ।
यह कर्मभोग के कारण दुःख दिया । न होने वाले विघ्न हैं ।।६८।।

तभी शाहूकार को क्रोध आया । उसने सेवकों से हुकूम किया ।
इस तस्कर को बांध कर लावें । मार मारिए निष्ठुरपणे ॥६९॥
उसे मारे बिना । जान हार वापस न मिलेगा ।
यह पक्का चोर है । सो ऐसे लक्षण हैं उसके ॥१७०॥
फिर उसके सेवक दौडकर गए सत्वर । बांधा उस मुसाफिर ।
अतिशय दिया मार । नहीं अंतर में दया ॥७१॥
वे निष्ठुर होकर लगे मारने । नहीं दया अंतःकरण में ।
मारो मारो ऐसा वचन । वैश्य तभी बोला ॥७२॥
मार मारकर किया जर्जर । बोला हार दे दे सत्त्वर ।
महानिर्दय निष्ठुर । दया न आवें किसी को ॥७३॥
फिर राजा वैश्य से बोला । अरे हार नहीं हमारे पास ।
कष्ट वितेगा शरीर पर । वृथा किस लिए ? जान ॥७४॥
वह वैश्य बोला सेवकों से । यह पक्का तस्कर, भला नहीं है ।

तभी शाहूकार को क्रोध आया । उसने सेवकों से हुकूम किया ।
इस तस्कर को बांध कर लावें । मार मारिए निष्ठुरपणे ।।६९।।
उसे मारे बिना । जान हार वापस न मिलेगा ।
यह पक्का चोर है । सो ऐसे लक्षण हैं उसके ।।१७०।।
फिर उसके सेवक दौडकर गए सत्वर । बांधा उस मुसाफिर ।
अतिशय दिया मार । नहीं अंतर में दया ।।७१।।
वे निष्ठुर होकर लगे मारने । नहीं दया अंतःकरण में ।
मारो मारो ऐसा वचन । वैश्य तभी बोला ।।७२।।
मार मारकर किया जर्जर । बोला हार दे दे सत्वर ।
महानिर्दय निष्ठुर । दया न आवें किसी को ।।७३।।
फिर राजा वैश्य से बोला । अरे हार नहीं हमारे पास ।
कष्ट वितेगा शरीर पर । वृथा किस लिए ? जान ।।७४।।
वह वैश्य बोला सेवकों से । यह पक्का तस्कर, भला नहीं है ।

अभी तक कबूल न करे । मार खाता है ॥७५॥
फिर तो व्यवहारी रूप से क्या करे ? गये राजा के दरबार में ।
राजा चंद्रसेन को कह सुनाये । कहा सकल वर्तमान ॥७६॥
वह सुनकर राजेश्वर । बोले ले आइए तस्कर ।
ऐसे वचन सुनकर सत्त्वर । सेवकों की मंडली दौडी ॥७७॥
उन्हों ने विक्रम को बांधा । लाया गया राज के पास ।
फिर प्रणिपात किया वेग से । सामने खड़ा रहा ॥७८॥
फिर राजा बोला पथिक से । तुम्हारे पास हार क्या है ?
वह अभी ही शाहूकार को दे दें । प्राण अपना बचायें ॥७९॥
तभी बोले विक्रम वचन । सुन राजा चन्द्रसेन ।
हार लिया नहीं है जान । असत्य न बोले कदापि ॥१८०॥
हार का कहो करके विचार । ये वृथा बोले तुम्ही सर्व ।
उसके न घडे विचार । घडा होगा सामर्थ्य ॥८१॥

हमारे ग्रह नहीं सानुकूल । न उत्पन्न होता ऐसा दुःख ।
उसका क्या करे कष्ट ? जो होने वाला, होता है ।।८१।।
ठीक, चोरी न करनी चाहिए किन्तु की । परन्तु अभी क्षमा करनी चाहिए ।
सर्व अपराध क्षमा करो । कृपा करी महाराजा ।।८३।।
ऐसा वचन सुनकर राजेश्वर । क्रोध में संतप्त जैसा हेतुपूर्वक कोयला ज़ले ।
गर्जना की सत्त्वर । बोलते हुए क्या हुआ ।।८४।।
सेवकों से आज्ञा की उठो सत्त्वर । उसके तोडो चरण-कर ।
फेंक दो नगर बाहर । अन्न-जल न दिया जाय ।।८५।।
ऐसा राजा का अविवेक । हुए मूढमति सर्व ।
नहीं कोई भाविक । यथा राजा तथा प्रजा ।।८६।।
तभी राजा के मुख पर शनैश्चर । सोचने न दे कुछ विचार ।
उसे पीड़ा की वारंवार । दुःख देते राजा ।।८७।।
ऐसी चन्द्रसेन की आज्ञा सुनकर । सेवक उठे झट करके ।

राजा विक्रम को चले लेकर । तभी नगर बाहर ॥८८॥
लाये नगर प्रदेश सीमा पर । तोड़ डाले चरण-कर ।
लोगों के नयनों में आए आश्रु । महासंकट आ गया ॥८९॥
तभी हाथ-पैर चार । उसके तोडे गए निष्ठुर ।
फेंक दिया ग्राम बाहर । सेवक गए कहने ॥१९०॥
फिर राजा ने सेवकों से पूछा । वह मर गया या जीवित है ?
उसके प्राण कहाँ उड़ गए ! ऐसा बोले उत्तर ॥९१॥
सो सेवक बोले महाराज ! सत्त्वर से उसके जाएँगें सहज ।
कर-चरण विना आत्मराज । कैसे सुख पायेंगे ? ॥९२॥
खाना खाये बिना हैरान । शरीर की पीडा अति दारूण ।
तड़पता है रातदिन । महादुःख होने से ॥९३॥
यहाँ क्या करे राजा विक्रम । हाथ पैर का भारी दुःख ।
जैसे तड़पती है मत्स्य । जल बिना जानिए तड़पना ॥९४॥

जो कोई भी आते हैं पथिक । उसे देखकर आता है रोना ।
वे बोलते हैं हे परमेश्वर ! कैसा कष्ट इस प्राणी को ? ॥९५॥
जो कोई देता है उसे अन्न जल । तभी राजा उसे देता है दंड ।
ताडन बंधन करें । ऐसा धाक जनो पर ॥९६॥
इस प्रकार हो गया एक मास । अति होता है विक्रम को दुःख ।
किन्तु दया न आवे किसी को । ग्रहदशा, कहते हैं इसे ॥९७॥
शोक कर राजा विक्रम । बोले ग्रह समर्थ कृपा कर ।
निष्ठुर न बने अपने अंतर । दया करो गरीब पर ॥९८॥
बोलते ही उस समय ऐसी करूणा । फिर शनैश्चर की हुई कृपा ।
बोले इन के सत्त्व की न जान सके कोई । सीमा हुई सिद्धांत से ॥९९॥
सो अभी पीडिए नहीं सिद्धांत से । की राजा के मन में प्रेरकता ।
अपने चित्त में चंद्रसेन द्रवित हुआ । बोले अन्न-जल जाय दिया ॥२००॥
अन्न-जल की आज्ञा हुई नगर जनों को दया आई ।

वे ला कर देते हैं कायमी । दयालु कृपालु जन ॥१॥
अन्न जल का हुआ सुकाल । परंतु कर-चरण विना पांगुल ।
उसके अतिदुःख से होता है विकल । चैन पडे क्षणभर ॥२॥
इस प्रकार दो वर्ष बीत गए । उस पर दुःख सहन किया अति दारूण ।
ऐसा कर्म का परिणाम । भुगते बिना नहीं छूटे ॥३॥
तभी किसी एक दिन । तैलीन बैठी थी बैलगाडी पर ।
जाती थी ससुराल में । उस मार्ग से ॥४॥
उस तैलीन के मैका । होते हैं उज्जयिनी नगर ।
ससुराल तामलिंदापुर नगर । ऐसा श्रोताजन जानिए ॥५॥
वहाँ तैली ने उज्जयिनी में । रास्ते पर लाया भूल करके ।
तभी वह उस मार्ग पर । आते थे दोनों ॥६॥
उसी वक्त उस तैलिन ने । देखा राजा विक्रम को ।
मन में बोली राजा कौन । लाया इस स्थान पर ॥७॥

सो नीचे उतरी कामिनी । विक्रम के चरणों मे पैर पड़ी ।
हाथ पैर बिना की । कैसी अवस्था शरीर की ॥८॥
तैलिन को देखकर राजा । बाई विजयी होंगे तुम्हारे चुड़े ।
वह वृत्तान्त ग्राम में क्या हुआ ? वह सर्व कहो मुझे ॥९॥
सो कामिनी बोली अहो राजा ! सर्व सुखी है करूणासे ।
किन्तु तुम्हारे देह की यह अवस्था ! क्या हुआ ? कहिए ॥२१०॥
राजा बोला, हे पतिव्रता, सुन । यह कर्म भोग जान उलझा हुआ ।
ग्रहदशा फिर गई मात । यह कर्तृत्त्व देव का ॥११॥
फिर सर्व कह सुनाया उसे । जो जो बीता जिस समये ।
वह सुनकर विक्रम से बोली । धन्य धन्य रे विधाते ॥१२॥
सो वह तैलिन क्या करती है ? राजा को पालखी में बिठाकर ।
अपने घर ले गई । किया अति आदर ॥१३॥
तब वह तैली कांपे थर थर । बोला यह विघ्न लाया घर ।

जब राजा सुनेगा राजेश्वर । सो हम क्या करें ? ।।१४।।
तभी सुनकर बोले श्वसुर को । यह विक्रमादित्य निश्चित ।
धर्मनीति से राज्य किया उज्जयिनी में । किन्तु यह दशा ग्रह की ।।१५।।
यह मालवा देश का मालिक । जैसे कूड-कचरे में पडा चिंतामणि ।
दैव ने दिया हमें । इसलिए आया तुम्हारे घर ।।१६।।
सो वह तैलीने क्या किया ? राजा चंद्रसेन ने सुना ।
हमने तस्कर जो बाहर फेंक दिया । हाथ पैर खंडित किया ।।१७।।
जब होगी राजेश्वर की आज्ञा । तब लाएँगे उस तस्कर ।
उपजी मुझ अंतर में दया । हुआ दीन-अनाथ ।।१८।।
सो राजा बोला, "भला रे भला । लाइए उस तस्कर" ।
प्रतिपाल भेजे लेने लिए के । अन्न-वस्त्र दिया ।।१९।।
ऐसा हुकूम किया राजा ने । सो तैली आया बुलाने पर ।
तभी तैली को विक्रम बोले । बात कहता हूँ, वह सुन ।।२२०।।

सो राजा बोले मेहतर से । तुम्हें किसी का सुनना न चाहिए ।
विक्रम मेरे घर में है । ऐसा कहीं भी न कहिए ॥२१॥
सो वह तैलिन बोली राजेश्वर । मेरे घर में तेल-घानी हांकिए ।
मैं दूँगा अन्न और वस्त्र । ऐसी मेरी नियमित प्रतिज्ञा ॥२२॥
सो बोला तैलिन से विक्रम । धन्य तेरी ऐसी मेधा ।
तेरे उपकार न मिटे हमारे पर । महा संकट में रक्षा किया ॥२३॥
ऐसे करते हुए कुछ दिन । होते हुए विक्रम को ।
उस तैलिन के घर रात दिन । घाणी हाँकने को ॥२४॥
तब सात वर्ष परिपूर्ण हुए । आगे कथा कैसे बढ़ी ? ।
उसे सुननी चाहिए । एकाग्र चित्त करके ॥२५॥
सो किसी एक दिन । संध्याकाल हुई रात ।
घाणी पर होते हुए विक्रम । उसे बुद्धि कैसे आई याद ॥२६॥
वह दीपराग का अवसर । ध्यान में आया राजेश्वर ।

राग गाया मधुर कंठसे । सुस्वर कंठस्थ कर ॥२७॥
रागोद्धार किया प्रत्यक्ष । दीप लगे लक्षानुलक्ष ।
जैसे दीपावली ही देख । प्रकाशमान नगर ॥२८॥
वहाँ एक स्तंभ की बैठक पर । राजकन्या अति रूपवंत ।
नाम है पद्मसेना निश्चित । बैठी थी आनंद युक्त ॥२९॥
तभी तीनों ने देखा प्रकाश । सो भेजा परिचारिका को ।
बोले किस ने किया दीपोत्सव । शोध करके मुझे बताइए ॥२३०॥
दीपावली तो आज नहीं । और लग्न भी कहीं पर नहीं ।
सो यह आश्चर्य दिखता है कुछ । देखकर आवे सत्त्वर ॥३१॥
यहाँ दीपक राग हुआ संपूर्ण । तभी दीप भूल से बुझ गए ।
सो दूसरा श्री राग नामक । वहाँ राजा ने शुरू किया ॥३२॥
पद्मसेना पूछे परिचारिका से । यह पुरुष रागज्ञानी विशेष ।
राग गा रहे थे अति सुर से । किसी स्थल पर देखिए ॥३३॥

इसके लाइए समाचार । ढूंढो सारा नगर ।
जहाँ होगा वह नर । इसे लाइए अति शीघ्र ॥३४॥
तभी परिचारिका चार जन । नगरी में शोध की तत्क्षण ।
वह तो घाणी तैलिनके घर । हाँकता है चौरंग ॥३५॥
वे वापस आकर राजकन्याको कहने लगी । क्यों चौरंग किया जो निश्चित ।
वह तस्कर तैलिनके गृह में । घाणी हाँकने बैठा ॥३६॥
उसका किया है रागरंग । किन्तु स्वरूप है बेढंग दिखता ।
जैसे होली की बूम । इस प्रकार दिखने लगे ॥३७॥
सो पद्सेना बोले सन्मानपूर्वक । तभी ले आइए उस तस्कर ।
हृदयपूर्वक पति के रूप स्वीकार करूंगी । इच्छा लगी अंतर मन में ॥३८॥
परिचारिका बोलती है प्रमाण । किन्तु राजाको कहना चाहिए जान ।
याने न लागे दूषण । शब्द न आवे हम पर ॥३९॥
तभी पद्मसेना बोली तुम्हारे पर क्यों ? तभी यहां देखने के लिए लाना पडे ।

सो राजा को कहा तुरन्त ही । तुम मन में डरो नहीं ॥२४०॥
तभी परिचारिका निकली वहाँ से । आये हुए तैली की दुकान पर ।
सो उस तैली से पूछा । तभी उसे ले चले ॥४१॥
एक स्तंभ की बैठक पर । उसे लिया तुरन्त ।
सो अवलोकन कर राजकुमारी । परम अंतर में संतोष ॥४२॥
सो वह चौरंगी बोली । तुम राग ज्ञानी विशेष अति ।
तो रागोद्धार करिए शीघ्र अभी । जिस से तृप्त होता है श्रवण कर ॥४३॥
सो उसने शूरु किया रागोद्धार । यथा न्याय गाता है सुस्वर ।
कंठ उसका अति मधुर । जैसा दूसरा गंधर्व ॥४४॥
ऐसा राजकन्या की बैठक पर । रागरंग होते हैं अपार ।
तब चन्द्रसेन अपनी बैठक पर । सुनते हुए ॥४५॥
सो राजाने परिचारिका से पूछा । आज ही कुमारी के महल पर ।
रंग होना दिवस रात । किस कार्य में कहिए तुरन्त ॥४६॥

सो दासी बोली समर्थ से । यह अन्याय हमारे से लाये ।
किन्तु इस अपनी कन्या की अवस्था । पास क्या शब्द हमारे ॥४७॥
परन्तु हमारी एक विनंति । आकर देखें अपनी आँखों से ।
सो आवें तुम्हारी समझ में । सर्व अवस्था वहाँ पर ॥४८॥
पद्मसेन का विचार । हमें कहिए न यह अरे ! ।
सो वहाँ चलिए सत्त्वर । बाद में जो करना है वह करिए ॥४९॥
तभी उस राजा को निद्रा आयी । आगे कथा कैसे चली ? ।
वह करना चाहिए श्रवण । एकाग्रचित किया ॥२५०॥
राजा विक्रम उस बैठक पर । बैठा है चिन्तातुर ।
तब उसके, साडेसात वर्ष सचमुच । भरे शनिदेव के ॥५१॥
राजा मन में चिन्ता करने लगा । बोला कभी उज्जयिनी प्राप्त होगा ।
क्लेश भुगत लिया अत्यंत । किन्तु कृपा न की गृहस्वामी ॥५२॥
ऐसा राजा चिंता करने लगा । हुई वहाँ क्या घटना तभी ? ।

शनिदेव हुए कृपावन्त । सन्मुख खड़ा हुआ ।।५३।।
बोले सुनकर राजा पद्मसेन । मैं न पहचान सका अज्ञान से ।
जो कि अनुभव उस के मन । आया कभी नहीं ।।५४।।
सो राजा उठा शीघ्र । किन्तु वे हाथ पैर नहीं ।
तभी उसकी भूमिशयन । साष्टांग नमस्कार किया ।।५५।।
तभी शनि बोले राजा विक्रम से । धन्य धन्य तुम्हारी महिमा ।
अभी मैं हूं प्रसन्न राजोत्तम । तुम्हारी जो इच्छा है, वह माँग ।।५६।।
तब विक्रम वचन बोले गद्गद् होकर । मनुष्यदेह को पीडा न दे जानबूझ कर ।
उसका दीजिए मुझे दान । कृपालु है शनिदेव ।।५७।।
मैं ने दुःख सहन किया अनिवार । ऐसा प्राणी को न करना पडे सहन ।
सो तुम किसी को न पीडिए तुरंत । ऐसा मांगता हूँ शनिदेव ।।५८।।
ऐसा सुनकर शनिदेव । बोले धन्य धन्य तुम विक्रम राज ।
पर पीडा का अनुभव । अपने अंतर से जानता हूँ ।।५९।।

तुम न माँगते है हाथ पैर । राज छत्रादि सुखोपाय ।
सो तुम्हें ईश्वर कहते हैं ये । परम दुःख निवारण करे ॥२६०॥
इसलिए उपजी शनिदेव को कृपा । राजा के कर चरणादि रुपवंता ।
पहले से अतिविशेष । सुंदर काया की शीघ्र ॥६१॥
सो राजा शनिदेव के चरण पकडकर । बोले कृपालु कृपा करो ।
इसकी माँग तुरंत की । किसी को पीडा न करो ॥६२॥
सो राजा से शनिदेव बोले । मैं ने क्या तुम्हें दुःख दिये ।
दुःख देखा गुरुनाथने । वह कष्ट किस प्रकार से ॥६३॥
तुम्हें दुःख दिया किंचित । मैंने कैसे त्रास दिया देव-दैत्य को ।
वह श्रवण किया निश्चित । गुरु पीडा अवधारी ॥६४॥
एक दिवस प्रातः काल में । नमन किया गुरु-माता ।
सो हाथ जोड़ कर उस वक्त । विनंति की उनसे ॥६५॥
अहो जी गुरुनाथ ! मैं तुम्हारी राशि में आता हूँ अभी ।

तब मान्य किया कृपावंत । साडेसात वर्षांत ॥६६॥
सो गुरु मुझे बोले अरे तुम । हम पर कृपा करें ।
हमारी राशि में न आयें । घडी एक जान शीघ्र ॥६७॥
सो बोला मैं उस वक्त । तुम मेरे कारण कंटाल गए ।
तभी मैं बोला मेरे पास कोई आधार नहीं दयालु । किसीने न किया मान्य मेरा ॥६८॥
तभी पाँच वर्ष पर मान्य किया । अथवा ढाई वर्ष तक तुम्हारे चरणों में धारण करो ।
किन्तु ढाई वर्ष की । बहुत ही कम है ॥६९॥
किन्तु उसने न माना गुरु । सो मैं बोला न घडे निर्धार ।
पुनः मन में किया विचार । अरे गुरु को कष्ट न दो ॥७०॥
गुरु केवल माता । सदा कृपा की छाया करिए ।
गुरुवचन न माना इस वक्त । अधःपतन प्राप्त होगा ॥७१॥
उस वक्त मैं पड़ा चरणों में । विनीत वचनों से विनंति की ।
मैं प्रसन्न तुम्हारे ग्रह शनि । माँग - माँग गुरुनाथ ॥७२॥

तभी गुरु बोले शनैश्चर से । हम पर कृपा करें ।
न आवें शरीर पर हमारे । उसकी अभी माँग करता हूँ ।।७३।।
सो मैं प्रसन्न हुआ उस क्षण । साडेसात प्रहर आता हूँ बोले ।
तुम्हीं मान्य न किया प्राणी सर्व । न माना मुझ से ।।७४।।
सो गुरुदेव बोले प्रमाण । तभी सवा प्रहर आया जान ।
वह मैं ने मान्य किया वचन । सो आज्ञा दी गुरु ने ।।७५।।
गुरु ने विचार किया अपने मन में । स्नानसंध्यादि स्वकर्म के ।
लिए बिताऊँगा सवा पहर मैं । सो शनि क्या करेगा ? ।।७६।।
ऐसा गर्व धारण किया मन में । वह मेरा समज में आया वृत्तांत ।
सो मैं ने विचारा चिंता से । कुछ चमत्कार दिखाईए ।।७७।।
तभी वह आया ग्रह का वक्त । तभी गुरु को हुई जिज्ञासा ।
बोले मृत्युलोक में गंगाजल । तब स्नान के लिए जाए शीघ्र ।।७८।।
शनिग्रह की पडने से छाया । तभी पलट गई गुरु की काया ।

सो फकीरवेश में उस जगह आया । शनैश्चर आया ॥७९॥
वहाँ पर होते ख़रबुजें दो । वे किये गुरु को अर्पण ।
सो गुरु हर्षयुक्त होकर । दो पैसे दिये उसको ॥२८०॥
सो स्नान किया उस वक्त । धोती में बांधे फल ।
झोली देती है शोभा करकमल । चले उस मार्ग से ॥८१॥
उसे आगे एक नगरी दिखी । किन्तु वहाँ क्या हुआ ? ।
राजा प्रधान समान । दोनों के साथ दो पुत्र ॥८२॥
वे दोनों उस दिन । गए थे शिकार के लिए ।
दो प्रहर हुए उनको । राह देखने लगे राजेन्द्र ॥८३॥
तब आते हुए दिखे नहीं । यहाँ देर हुई भोजन के लिए ।
तभी सेवकों से आज्ञा की । ढूंढ कर लाइए दोनों को ॥८४॥
सो वे सेवक निकले शीघ्र । शीघ्र आये गाँव के बाहर ।
तभी उन्हों ने आगे देखा विप्र । हाथमें झोली खरबुजा की ॥८५॥

तब शनैश्चर ने चमत्कार किया । फलों की मस्तक पर सावयव हुई ।
सेवकों ने पहचान लिया ब्रह्मदेव । बोले तुम्हारे पास क्या है ? ॥८६॥
ब्राह्मण बोला सेवकों से । खरबुजें लिए फराल के लिए ।
सेवक बोलते हैं रुधिर । स्राव होता दिखता है ॥८७॥
तुम ब्राह्मण हो या शूद्र ? वस्त्रों में से बहता है रुधिर ।
क्या है वे सत्त्वर । हमे दे दीजिए तुरन्त ॥८८॥
सो गुरू हुआ भयभीत । बोले ऐसा अघटित क्यों बोलते हैं? ।
नीचे दृष्टि करके झोली में देखा । वहाँ वह रुधिर प्रत्यक्ष ॥८९॥
सेवकों ने झोली छीन ली । सो उसे देखकर छोड़ दी ।
तब निकले दो शिर कमल । प्रधान राजपुत्र के ॥२९०॥
सेवक बोले रे चांडाल ! महादुष्ट पतित तु दुर्जन ।
ब्रह्मवंशी अमंगल । दया नहीं तेरे अंतर ॥९१॥
वह क्रोधयुक्त मानस से । बंधन किया ब्राह्मण को ।

उसे मार मारते हुए । राजा के पास लायें ॥१२॥
राजा के सामने खड़ा किया । सेवक वर्तमान कहने लगे ।
यह बालहत्यारी ब्राह्मण । इसने होनों को मारा है ॥१३॥
सुनते ही राजा को आयी मूर्च्छना । मनमें बोले कैसे किया नारायण ! ।
एक पुत्र था उस मन में । नहीं आया तुम्हें क्यों ? ॥१४॥
ब्राह्मण, यह नहीं है काल । याने निगल गए मेरा बालक ।
तभी इसे ले जाओ तत्काल । चढ़ा दीजिए सूली पर ॥१५॥
ऐसा हुकूम था राजा का । सूली बनाया लोहे का ।
ले जाकर सचमुच गाड़ दिया । नगर बाहर से ॥१६॥
तभी भृगू के मंदिर में । वर्तमान श्रुत हुए ।
तभी वे दुःखपूर्ण छाती पिटने लगे । उसने लिखा ग्रंथ विस्तार से ॥१७॥
किन्तु राजपुत्र की कामिनी । पतिव्रता खाना लायी ।
वार्ता सुनकर शीघ्र । सती के रूपमें सिद्ध हुई ॥१८॥

अभी यहाँ गुरुनाथ को । ले गए सूली के पास ।
उसी वक्त कुछ न सुझे गुरु को । ग्रहदशा ने दुःख दिया ॥९९॥
सो गुरु बोले सेवकों को । अभी सूली न हमें दिया जाय ।
दस सहस्त्र रुपये तुम्हें । देता हूँ क्षण भरमें रुकिए ॥३००॥
दो घटिका हमें । सूली न दी जाए निश्चित ।
सो अवलोकन करें नेत्र से । कैसे होगा वह ? ॥१॥
ऐसे करूणा शब्द बोलते हुए तभी । सो वे सेवकों को आयी दया ।
तभी वे बोले दो घटिका रुकिए । बाद में दीजिए सूली उसे ॥२॥
ऐसे बोलते-बोलते जान । सवा प्रहर हुआ परिपूर्ण ।
प्रधान राजपुत्र दोनों जन । घोडे सहित आये ॥३॥
जिसने राजा को मालूम किया । उसका दरिद्र दूर किया ।
बादमें सेवकों को आज्ञा दिया । ब्राह्मण को सूली न जाए दिया ॥४॥
तभी सेवक दौडे सत्त्वर । आए नगर बाहर ।

कहे समाचार । सूली न दी जाए ब्राह्मण ॥५॥
सो उसे लाए राजा के पास । खड़ा रहा सन्मुख ।
आशीर्वाद दिया राजा को । अपना कह सुनाया वृत्तान्त ॥६॥
सुन कर राजा सद्गदित । बोला मुझे न होता विदित ।
मैं आरोप लगाकर मार डालने । थे तुम्हे गुरुराज ॥७॥
धिक्-धिक् इस संसार । मैं महापापी अनिवार ।
कितना बडा किया अविचार । किया राज्य मद-गर्व कर ॥८॥
तभी सद्गदित हुआ राजा । गुरुचरण पकडे प्रीति पूर्वक ।
फुटफुटकर रडे निश्चित । मैं अपराधी गुरुराज ॥९॥
नेत्र तपे, हुआ अविचार । उसे क्षमा किया साचार ।
सो हाथ घट कर सद्गदित । सिंहासन पर बिठाया ॥३१०।
सो गुरु बोले, सुनिए भूपाल । यह नहीं तुम्हारा अन्याय ।
यह शनैश्चर की कला । तुम्हे दिया दुःख ॥११॥

सो झोली लाकर तपासे । तब वह खरबुजे की दिखी ।
सिर कमलों की आकृति । अदृश्य हुई तत्काल ।।१२।।
राजा ने उस को कराया भोजन । गुरु पंक्ति में बैठे हम ।
अधिक दिव्य ब्राह्मण । सर्व को तृप्ति प्राप्त हुई ।।१३।।
सो गुरु को वस्त्र-आभूषण । दिया राजा भृगू ने ।
तभी आज्ञा प्राप्त की गुरु ने । प्रयाण किया वहाँ ।।१४।।
सो गुरु देव के पास आये शनिदेव । नमन किया साष्टांग ।
बोले वर्तणूक कैसी हुई ? वह कहिए गुरुनाथ ।।१५।।
गुरु बोले बापा शनैश्चर । सवा प्रहर में किया मेरा धूल ।
साडेसात वर्ष के बाद आता सही । सो तब क्या होता है न जान सके ।।३६।।
तुम ग्रहों में ग्रह श्रेष्ठ । जीवन को देते हैं बहुत कष्ट ।
मैं गुरु तेरा अति श्रेष्ठ । बहुत उपकार चुकाया ।।१७।।
जो हुआ है, वह बराबर हुआ है । किन्तु ऐसा किसीको न कष्ट दे ।

तुम्हारा शपथ मेरा इस समय । शनिग्रह समर्थ ॥१८॥
सो शनिदेव बोले गुरुदेव को । गर्व न धरिए मन में ।
गर्व धरने वाले उस पुरूष को । ऐसा ही मैं अति कष्ट दूँगा ॥१९॥
गुरुजी तुम्हें गर्व हुआ । इसलिए यह अपराध रचा गया ।
तभी क्षमा करा बालक को । अपराध मेरा करो क्षमा ॥३२०॥
सो शनि गया पास शिव के । बोले अभी आता हूँ तुम्हारे पास ।
तभी शंभु बोले हमें । क्या करेगा आकर ? ॥२१॥
किन्तु आयेगा तभी कहना चाहिए । ऐसा दोनों का बोलना हुआ ।
सो दूसरे दिन शनि ने । आता हूँ ऐसा सूचन किया ॥२२॥
शंकर ने वचन सुने । क्षण एक में कूदा कैलास पर ।
सो शनि से बोलना हुआ महादेव का । तुम्हारा हमने क्या किया ? ॥२३॥
सो शनि महादेव से बोला । तुम्हारा धाक त्रिभुवन सर्व में ।
मेरे में समाये हुए देवाधिदेवा । यह क्या थोड़ा हैं ? ॥२४॥

सुना हँस कर कैलास राज । बोले धन्य तुम्हारा उग्र तेज ।
सो कृपा करके सहज । आज्ञा दी शनि को ॥२५॥
सो ग्रह आया रामचंद्र पर । उन्हों ने भुगता वनवास ।
और ग्रह आया सीता पर । रावण तुरन्त उसे उठा ले गया ॥२६॥
रावण के पलंग के नीचे । नवग्रह पालथी मार कर रहे थे ।
उनके उपर पलंग रखा निरांत से । रावण पलंग पर निरांत से सोता है ॥२७॥
तभी वहाँ आये नारदमुनि । वह बोलते हुए मुझे ।
तुम ग्रह श्रेष्ठ महाअभिमानी । ऐसी दया तुम्हारी ॥२८॥
सो यहाँ तुम्हारा कुछ न चलेगा । गरीबों को कष्ट बल पूर्वक दिया ।
यह सामर्थ्य नहीं अलग । उगते ही पुरुषार्थ भुगता ॥२९॥
फिर शनि नारद से बोले । हम उनके मुँह पर गिरकर सुविधाकरना ।
सो देखा पराक्रम । कैसा है ? वह मैं बताऊँगा ॥३०॥
नारद बोले मैं ऐसे करूंगा । ऐसा वचन बोला ।

फिर रावण के पास जाकर । कहे 'उसके विचार ।।३१।।
सो ग्रह पालथी मार कर । निद्रा करते हैं रातदिन ।
फिर भी वे अनुचित है ऐसा जान । वैरियों के हृदय पर पैर लगाइए ।।३२।।
वे वचन रावण ने मान लिये । सो पालथी मारे ऐसी सुविधा की ।
तभी वहाँ क्या हुआ ? वे देखो-सुनो सज्जनों ।।३३।।
दृष्टि फिराता है शनैश्चर । षण्मास सहपरिवार ।
खत्म किया श्रीरामचन्द्र । पुत्र पौत्र सहित अरे ।।३४।।
हरिश्चन्द्र पर आया शनि । बारहवें अति क्रूर स्थान ।
पीडित हुआ कौशिक मुनि । राज्यभ्रष्ट उसे किया ।।३५।।
आगे अति दुःख उसे दिया । स्त्रीपुत्रादि बेचने पडे ।
सर्व बिक गया अतिशुद्र के पास । वहाँ कष्ट दिया बहुत ।।३६।।
इस प्रकार कष्ट दिया राजोत्तम को । दमयंती प्राण मनोरमा ।
दुःख दिया उसने इस विक्रम राजा । दमयंती को दी पीडा ।।३७।।

पर ग्रह आया इंद्र राजा । भुगतली गौतम की जाया ।
भगांकित हुई सर्व काया । ऋषि शाप ने किया ॥३८॥
ग्रह चंद्र पर आया । गुरु पत्नी से स्पर्श किया ।
चंद्र को कलंक लगा । ऐसा हुआ जान समझे ॥३९॥
ग्रह आया वशिष्ठ पर । क्षय हुए शत पुत्र ।
उस ने ही पीडित किया पराशर । मत्स्यगंधा भुगत ली ॥३४०॥
पांडवों ग्रहदशा भुगतने लगे । राज्य हार कर वन में गये ।
कौरवों का क्षय किया क्षण में । ग्रह आये तत्काल ॥४१॥
वैसे ही ग्रह आया श्री कृष्ण पर । पाप का दाग लगा ।
वे किसी कारण से गये । हरिविजय की वह कथा ॥४२॥
सो कृष्ण बोले शनैश्चर को । तुम महासमर्थ होगा खरा ।
सर्व त्रासित हुए तुम्हारा डर लगता है । देव-दानवादि के साथियों को ॥४३॥
ऐसे देवादिक हुए त्रासित । उसने तुम्हें कितना दुःख दिया ।

किंचित चमत्कार दिखाये । समझाया तुम्हारे लिए ॥४४॥
फिर विक्रम उठे शीघ्र । साष्टांग नमस्कार किए ।
धन्य अवधारी शनैश्चर । पावन किया मुझे ॥४५॥
अभी मैं तुम्हारा अनन्य शरण । कृपा की अनाथ पर ।
उसके लिए देना होगा वरदान । न पीडा देंगे प्राणीमात्र ॥४६॥
सो शनि बोले विक्रम से । धन्य तुम परोपकारी होंगे ।
परपीडा निवारण करेंगे । तुम्हारी उपमा न होगी ॥४७॥
तभी प्रसन्न हुए शनैश्चर । राजा को दिया अपना वरदान ।
इस पुस्तिका का श्रवण-पठन करे जो नर । उसे मैं करूँगा नहीं पीडा ॥४९॥
भाव-भक्ति से करेंगे श्रवण-पठन । आदर से पुस्तिका का संरक्षण करे ।
उसकी रक्षा मैं करूँगा रात-दिन । करूँगा कृपा सर्वथा ॥४९॥
जो कोई श्रवण-पठन न करें । और पुस्तिका की उपेक्षा करें ।
उस नर के शरीर को । पीडा करूँगा बहुत मैं ॥३५०॥

श्रवण-पठन का सुनिए विचार । नित्य अथवा शनिवार ।
श्रवण-पठन कर जो नर । उपवास करे अति संतोष ॥५१॥
जब न करे उपपोषण । तब श्रवण करिए दिन रात ।
उसे मेरा मानिए संतोष । फिर पीडा न करूँ सिद्धांत से ॥५२॥
यह मेरा वचन कायम । विक्रम को दिया निश्चियसे ।
उस नर से मैं भाग्यवान । निश्चित करूँगा जान ॥५३॥
ऐसा दिया राजा को वरदान । शनिदेव गए अपने स्थान पर ।
आगे कथा कैसी चली ? वह श्रवण करिए श्रोताजन ॥५४॥
राजकन्या के आँचल में । विक्रम को मिले शनैश्चर ।
तभी राजा का दिव्य हुआ शरीर । जैसा प्रकट हुआ सूर्य ॥५५॥
तब चंद्रसेन राजा आया । तब उसने देखा विक्रम ।
जैसे कामदेव का बूता । स्वस्थ मन से हुआ ॥५६॥
फिर वह पद्सेना राजकुंमारी । राजा विक्रम को वरी ।

राजा ने पूछा उस अवसर । आप कहाँ के महाराज? ॥५७॥
विक्रम बोले शीघ्र । मैं तुम्हारा ऐसा था चोर ।
श्रीपति वैश्य साहूकार । बुलाइए उसे शीघ्र ॥५८॥
तभी वह दौड़ा सेवकों की बैठक पर । वैश्य बैठा गादी पर ।
बोला राजा ने बुलाया शीघ्र । सत्त्वर वहाँ चलिए ॥५९॥
वैश्य उठा शीघ्र । आकर राजा को किया नमन ।
राजा बोले वैश्य के पास । यह हो सकता है क्या तस्कर ? ॥३६०॥
वैश्य बोला राजा से । अभी चलिए मेरे बंगले ।
अवश्य बोले शीघ्र । चित्रशाला में आ गये ॥६१॥
तब तुम्हारे चित्र का निर्जीव हंस । जो निगल गया था हार ।
वह पुनः ओका धीरे से । जैसा था वैसा ही हार ॥६२॥
हार निकाला हंस ने । वह देखा सर्वजन ने ।
यह आश्चर्य सर्व के कारण । बोलते हैं इसे अघटित ॥६३॥

फिर वह वैश्य बनिया । अपने मन में बहुत संतुष्ट हुआ ।
कन्या चरणों में अर्पण किया । विक्रम के पास ॥६४॥
लोग बोलते हैं अघटित कला । निर्जीव ने निगल लिया हार ।
दोष लाए महापुरूष पर । वह आज सत्य मालूम पड़ा ॥६५॥
चन्द्रसेन ने विक्रम से पूछा । आप कौन-से देश में रहते हैं ? ।
क्या शुभ नाम और कौन-सा वंश ? जन्म तुम्हारा कहिए ॥६६॥
तब बोला चन्द्रसेन से विक्रम । क्या पूछते हो विचक्षण ? ।
उज्जयिनी का मैं हूं राजा । मेरा नाम विक्रम ॥६७॥
ऐसा सुनकर राजेश्वर । उन्हें साष्टांग किए नमस्कार ।
बोला हुआ बडा अन्याय । कृपा करिए दयालु ॥६८॥
उसी वक्त क्या हुआ सुनिए । तब उसे कष्ट क्यों प्राप्त हुआ ? ।
कैसे वह अनुचित हुआ जान नहीं सकते । उसके क्या उपाय ? ॥६९॥
विक्रम बोले राजेश्वर । यह हमारी ग्रहदशा का है फेरा ।

पूजा न किया शनैश्चर ! सो कष्ठ किया प्राप्त ॥३७०॥
जब ग्रह न था सानुकूल । सो तुम्हारी बुद्धि विकल ।
अभी ग्रह हुआ सानुकूल । सो ऐसा बोलते हैं ॥७१॥
ऐसा राजा ने उत्सव किया बहुत । उधाडे द्रव्य के भांडार ।
धर्म किया अपार । याचक जनों को किया संतुष्ट ॥७२॥
फिर वह तैली को बुलाया । विक्रम ने उसको नमस्कार किया ।
एक देश उसे दिया । सुखी किया उस वक्त ॥७३॥
चंद्रसेन हर्ष से भर गया । बोला मेरा भाग्य का वहीं अंत ।
विक्रम ने प्राप्त किया जमात । धन्य मैं एक संसारी ॥७४॥
ऐसा करते हुए एक मास । हुआ राजा विक्रम को ।
फिर पूछा चंद्रसेन से । आज्ञा मांगी नृपति ने ॥७५॥
सो चतुरंग दल सिद्ध कर । हाथी घोडे दास-दासी जान ।
देश नगर ग्राम देकर । जमात को बुलाया ॥७६॥

तब उस शाहूकार स्वयं । विविध वस्तु अनर्घ्य रत्न ।
विक्रम को देकर । वचन किया कन्या का ॥७७॥
ये सर्व लेकर दल भार । उज्जयिनी का आया राजेश्वर ।
नगर सजाया सत्वर । अति आनंद हुआ ॥७८॥
फिर सुमुहूर्त देखकर । विक्रम को बिठाया सिंहासन ।
तृप्त किए दान याचक को देकर । अब मन में चिंता नहीं है ॥७९॥
सो हे शनैश्चर व्रत ! राजा विक्रम ने किया आचरित ।
पीडा गई समस्त । शनि प्रसाद करने से ॥३८०॥
यह भारत वर्ष की कथा । किन्तु अर्थ विषय में नहीं न्यूनता ।
यथामति वर्णन किया तत्त्वतां । श्रवण करिए मनसे भाविक हो ॥८१॥
इस पुस्तिका श्रवण करने से । सकल विघ्न दूर होते हैं ।
ग्रह पीडा अति दारूण । कल्पना में भी कदापि बाधा देते नहीं है ॥८२॥
सुनते ही कथा नवग्रह की । आई हुई पीडा निवारे क्लेश की ।

वार्ता ही नुरे दुःख की । कृपा करते हैं सर्व ग्रह ॥८३॥
श्रवण-पठन निदि ध्यास । लेखक-पाठक सर्व ।
पुस्तिका करे उनका संरक्षण । क्लेश विघ्न बाधा देते नहीं कदापि ॥८४॥
यह शनैश्चर की ख्याति । केवल शनैश्चर की मूर्ति ।
दिन रात जो कोई धर ध्यान । उनका संरक्षण करें शनिदेव ॥८५॥
सकल दुःख दरिद्र । जो आने वाले दूर करें समग्र ।
भाव पूर्वक श्रवण किया तुरन्त । उन्हें फल प्राप्त होता है ॥८६॥
कहता है अरे मेरे काकाजी माहिपति । यह प्रीति प्राप्त करो शनैश्चर प्रति ।
कृपालु वह उग्रमूर्ति । निर्विघ्न किए सर्व को ॥८७॥
इति श्री शनैश्चर की कथा । उन्हों ने स्वयं कहा ।
हमें यह मायिक वार्ता । करी श्री पांडुरंग ॥३८८॥

★ ★ ★

॥ अथ शनिस्तोत्रम् ॥

अस्य श्रीशनैश्चरस्तोत्रमंत्रस्य दशरथऋषिः शनैश्चरो देवता त्रिष्टुप्छंदः शनैश्चरप्रीत्यर्थे जपे विनियोगः ॥ दशरथ उवाच ॥ कोणोऽन्तको रौद्रयमोऽथ बभ्रुः कृष्णः शनिः पिंगलमंदसौरिः ॥ नित्यं स्मृतो यो हरते च पीडां तस्मै नमः श्रीरविनंदनाय ॥१॥ सुरासुराः किंपुरुषा गणेंद्रा गंधर्वविद्याधरपन्नगाश्च ॥ पीड्यंति सर्वे विषमस्थितेन तस्मै नमः श्रीरविनंदनाय ॥२॥ नरा नरेंद्राः पशवो मृगेंद्रा वन्याश्च ये कीटपतंगभृंगाः ॥ पीड्यंति सर्वे विषमस्थितेन तस्मै नमः श्रीरविनंदनाय ॥३॥ देशाश्च दुर्गाणि वनानि यत्र सेनानिवेशाः पुरपत्तनानि ॥ पीड्यंति सर्वे विषमस्थितेन तस्मै नमः श्रीरविनंदनाय ॥४॥ तिलैर्यवैर्माषगुडान्नदानैर्लोहेन नीलांबरदानतो वा ॥ प्रीणाति मंत्रैर्निजवासरे च तस्मै नमः श्रीरविनंदनाय ॥५॥ प्रयागकूले यमुनातटे च सरस्वतीपुण्यजले गुहायाम् ॥ यो योगिनां ध्यानगतोऽपि सूक्ष्मस्तस्मै नमः श्रीरविनंदनाय ॥६॥ अन्यप्रदेशात्स्वगृहं प्रविष्टस्त्वदीयवारे स नरः सुखी स्यात् ॥ गृहाद्गतो यो न पुनः प्रयाति तस्मै नमः श्रीरविनंदनाय ॥७॥ स्रष्टा स्वयंभूर्भुवनत्रयस त्राता हरिः संहरते पिनाकी ॥ एकस्त्रिधा ऋग्यजुःसाममूर्तिस्तस्मै नमः श्रीरविनंदनाय ॥८॥ शन्यष्टकं

यः पठति प्रभाते नित्यं सुपुत्रैः पशुबांधवैश्च ॥ पठेच्च सौख्यं भुवि भोगयुक्तं प्राप्नोति निर्वाणपदं परं सः ॥९ ॥ कोणस्थः पिंगलो बभ्रुः कृष्णो रौद्रोऽन्तको यमः ॥ सौरिः शनैश्चरो मंदः पिप्पलादेन संस्तुतः ॥१० ॥ एतानि दश नामानि प्रातरुत्थाय यः पठेत् ॥ शनैश्चरकृता पीडा न कदाचिद्भविष्यति ॥११ ॥

॥ इति श्रीदशरथप्रोक्तं श्रीशनैश्चरस्तोत्रं संपूर्णम् ॥

॥ श्री शनैश्चर की आरती ॥

जय श्री शनि देव । पद्मकर रखा सिर पर ।
आरती ओवारे हम । मनोभाव से करें सेवा ॥ध्रुव०॥
सूर्य सूत शनिमूर्ति । तुम्हारी अगाध कीर्ति ।
एक मुख से क्या वर्णन करूँ ? शेष न चले स्फूर्ति ।।जय० ॥१॥
नवग्रहों में श्रेष्ठ । पराक्रम बहुत अद्भुत तुम्हारे ।
जिसके पर कृपा करें । होवे रंक से राजा ।।जय० ॥२॥

विक्रम समान हो । शक कर्ता पुण्यराशि ।
गर्व धरने पर सजा दी । बहुत ही छले गये उससे ।।जय० ।।३।।
शंकर के वरदान से । गर्व रावण ने किये ।
साडेसाती आई उस पर । समूल नाश किये ।।जय० ।।४।।
प्रत्यक्ष गुरुनाथ । दिखाया चमत्कार ।
शूली के पास ले उसे गए । पुनः सन्मान किये ।।जय० ।।५।।
ऐसे कितने गुण गाऊँ ? बहुत है, पुरे न हुए सारा ।
कृपा की दीन पर । महाराज समर्थ ।।जय० ।।६।।
दोनों हाथ जोड़कर । क्षमा लीन सदा पायी ।
प्रसाद उसका माँगे । उदय काल सौख्य देना ।
जय जय श्री शनिदेव । पद्मकर रखा सिर पर ।।जय० ।।७।।

★ ★ ★

Astro • Puja • Vastu

FALIT JYOTISH AND VASTU SHASTRA CONSULTANT

FOR ALL DHARMIK POOJA'S

SHRI GANESH PUJA

SHRI SATYANARAYAN PUJA

VASTU SHANTI

WEDDING | SAKHARPUDA | MUNJ

JANANA SHANTI | RUDRABHISHEK

SAPTASHATI PATH | HAVAN | ETC.

HARI OM DHARMIK PUJA VIDHI KENDRA

SANPADA OFFICE
Office No. 8, 1st Floor, Shiva Triveni Galleria CHS., Plot No. 13, Sector 8, Sanpada, Navi Mumbai - 400705.

GOVANDI OFFICE
Shri Swaybhu Hanuman Mandir, Deonar Mahanagarpalika Vasahat, Govandi, Mumbai - 400043.

hariom astrologers
hariom astrologers
hariom_astrologers
hariomastrologers@gmail.com
www.hariomastrologers.com